जैनपदसंग्रह

द्वितीय भाग।

प्रकाशक

जैन ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय।

श्रीवीतरागाय नमः ।

जैनपदसंग्रह

द्वितीय भाग।

पं० भागचन्द्रजीके पदोंका संग्रह।

प्रकाशक

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, बम्बई ।

श्रावण, वि० स० १९८३ ।

चौथी वार] [मूल्य चार आने

पदोंकी वर्णानुक्रमणिका।

ओंनमः सिद्धेभ्यः ।

जैनपदसंग्रह ।

द्वितीय भाग ।

१

राग ठुमरी ।

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसैं, आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥ टेक ॥ रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी । दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ १ ॥ वरणादिक विकार पुदगलके, इनमें नहिं चैतन्य निशानी । यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ २ ॥ मैं सर्वांगपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी । मिलै निराकुल स्वाद न यावत, तावत परपरनति हित मानी ॥ ३ ॥ भागचन्द्र निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी । नित अकलंक अवंक शंक विन, निर्म्मल पंक विना जिमि पानी ॥ सन्त निरन्तर चि० ॥ ४ ॥

२

धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ॥ टेक ॥ दर्शन-बोधमई निजमूरति, जिनकों

अपनी भासी हो । त्यागी अन्य समस्त वस्तुमें, अहंबुद्धि दुखदा सी हो ॥ १ ॥ जिन अशुभोपयोगकी परनति, सत्तासहित विनाशी हो । होय कदाच शुभोपयोग तो, तहँ भी रहत उदासी हो ॥ २ ॥ छेदत जे अनादि दुखदायक, दुविधि बंधकी फाँसी हो । मोह क्षोभ रहित जिन परनति, विमल मयंक-कला सी हो ॥ ३ ॥ विषय-चाह-दव-दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो । भागचन्द ज्ञानानंदी पद, साधत सदा हुलासी हो ॥ धन० ॥ ४ ॥

३

यही इक धर्ममूल है मीता ! निज समकितसार-सहीता । यही० ॥टेक॥ समकित सहित नरकपदवासा, खासा बुधजन गीता । तहँतें निकसि होय तीर्थंकर, सुरगन जजत सप्रीता ॥ १ ॥ स्वर्गवास हू नीको नाहीं, विन समकित अविनीता । तहँतें चय एकेंद्री उपजत, भ्रमत सदा भयभीता ॥ २ ॥ खेत वहुत जोते हु बीज विन, रहत धान्यसों रीता ॥ ३ ॥ सिद्धि न लहत कोटि तपहूतें, वृथा कलेश सहीता ॥ ३ ॥ समकित अतुल अखंड सुधारस, जिन पुरुषननें पीता । भागचन्द ते अमर भये, तिनहींनें जग जीता ॥ यही इक ० ॥ ४ ॥

४

राग ठुमरी ।

जीवनके परिनामनिकी यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ॥ टेक ॥ नित्य निगोदमाहितैं कढिकर, नर परजाय पाय सुखदानी । समकित लहि अंतर्मुहूर्तमें, केवल पाय वरै शिवरानी ॥ १ ॥ मुनि एकादश गुणथानक चढ़ि, गिरत तहांतैं चितभ्रम ठानी । भ्रमत अर्धपुद्गलपरावर्तन, किंचित् ऊन काल परमानी ॥ २ ॥ निज परिनामनिकी सँभालमें, तातैं गाफिल मत है प्रानी । बंध मोक्ष परिनामनिहीसों, कहत सदा श्रीजिनवरवानी ॥ ३ ॥ सकल उपाधिनिमित भावनिसों, भिन्न सु निज परनतिको छानी । ताहि जानि रुचि ठानि होहु थिर, भागचन्द यह सीख सयानी ॥ जीवनके पर० ॥ ४ ॥

५

परनति सब जीवनकी, तीन भाँति वरनी ।
एक पुण्य एक पाप, एक रागहरनी ॥ परनति० ॥टेक॥
तामें शुभ अशुभ अंध, दोय करैं कर्मबंध,
वीतराग परनति ही, भवसमुद्रतरनी ॥ १ ॥
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाहीं मनोग,
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी ॥ २ ॥
त्याग शुभ क्रियाकलाप, करो मत कदाच पाप,
शुभमें न मगन होय, शुद्धता विसरनी ॥ ३ ॥

ऊंच ऊंच दशा धारि, चित्त प्रमादको विडारि,
ऊंचली दशातैं स्रति, गिरो अधो धरनी ॥ ४ ॥
भागचन्द या प्रकार, जीव लहै सुख अपार,
याके निरधार स्याद,-वादकी उचरनी ॥ परनति० ॥५॥

६

जीव! तू भ्रमत सदीव अकेला। संग साथी कोई नाहिं तेरा ॥टेक॥ अपना सुखदुख आप हि भुगतै, होत कुटुंब न भेला। स्वार्थ भयैं सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला ॥ १ ॥ रक्षक कोइ न पूरन है जब, आयु अंतकी बेला। फूटत पारि बँधत नहीं जैसें, दुद्धर-जलको ठेला ॥ २ ॥ तन धन जीवन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजालका खेला। भागचन्द इमि लख करि भाई, हो सतगुरुका चेला ॥ जीव तू भ्रमत० ॥ ३ ॥

७

आकुलरहित होय इमि निशदिन, कीजे तत्त्व-विचारा हो। को मैं कहा रूप है मेरा, पर है कौन प्रकारा हो ॥टेक॥ १ ॥ को भव-कारण बंध कहा को, आस्रवरोकनहारा हो। खिपत कर्मबंधन काहेसों, थानक कौन हमारा हो ॥ २ ॥ इमि अभ्यास कियें पावत है, परमानंद अपारा हो। भागचंद यह सार जान कीजे वारंवारा हो ॥ आकुलरहित होय० ॥ ३ ॥

८

राग भैरव।

सुन्दर दशलच्छन वृष, सेय सदा भाई।
जासतैं ततच्छन जन, होय विश्वराई॥ टेक॥
क्रोधको निरोध शांत, सुधाको नितांत शोध,
मानको तजौ भजौ स्वभाव कोमलाई॥ १॥
छल बल तजि सदा विमलभाव सरलताई भजि,
सर्व जीव चैन दैन, वैन कह सुहाई॥ २॥
ज्ञान तीर्थ स्नान दान, ध्यान भान हृदय आन,
दया-चरन धारि करन-विषय सब विहाई॥ ३॥
आलस हरि द्वादश तप, धारि शुद्ध मानस करि,
खेहगेह देह जानि, तजौ नेहताई॥ ४॥
अंतरंग बाह्य संग, त्यागि आत्मरंग पागि,
शीलमाल अति विशाल, पहिर शोभनाई॥ ५॥
यह वृष-सोपान-राज, मोक्षधाम चढ़न काज,
तनसुख (?) निज गुनसमाज, केवली बताई॥ सुन्दर०॥६

९

प्रभाती।

षोड़शकारन सुहृदय, धारन कर भाई!
जिनतैं जगतारन जिन, होय विश्वराई॥ टेक॥
निर्मल श्रद्धान ठान, शंकादिक मल जघान,
देवादिक विनय सरल-भावतैं कराई॥ १॥

शील निरतिचार धार, मारको सदैव मार,
अंतरंग पूर्ण ज्ञान, रागको विधाई ॥ २ ॥
यथाशक्ति द्वादश तप, तपो शुद्ध मानस कर,
आर्त रौद्र ध्यान त्यागि, धर्म शुक्ल ध्याई ॥ ३ ॥
जथाशक्ति वैयावृत, धार अष्टमान टार,
भक्ति श्रीजिनेन्द्रकी, सदैव चित्त लाई ॥ ४ ॥
आरज आचारजके, वंदि पाद-वारिजकों,
भक्ति उपाध्यायकी, निधाय सौख्यदाई ॥ ५ ॥
प्रवचनकी भक्ति जतनसेंति बुद्धि धरो नित्य,
आवश्यक क्रियामें न, हानि कर कदाई ॥ ६ ॥
धर्मकी प्रभावना सु, शर्मकर बढावना सु,
जिनप्रणीत सूत्रमाहिं, प्रीति कर अघाई ॥ ७ ॥
ऐसे जो भावत चित, कलुषता बहावत तसु,
चरनकमल ध्यावत बुध, भागचंद गाई ॥ षोडश० ॥ ८ ॥

१०

प्रभाती ।

श्रीजिनवर दरश आज, करत सौख्य पाया ।
अष्ट प्रातिहार्यसहित, पाय शांति काया ॥ टेक ॥
वृक्ष है अशोक जहां, भ्रमर गान गाया ।
सुन्दर मन्दार-पहुप,-वृष्टि होत आया ॥ १ ॥
ज्ञानामृत भरी बानि, खिरै भ्रम नसाया ।
चमर ढोरत हरि, हृदय भक्ति लाया ॥ २ ॥

सिंहासन प्रभाचक्र, वालंजग सुहाया ।
देव दुंदुभी विशाल, जहां सुर वजाया ॥ ४ ॥
मुक्ताफल माल सहित, छत्र तीन छाया ।
भागचन्द अद्भुत छवि, कही नहीं जाया ॥ श्रीजिन०॥५॥

११

राग ठुमरी ।

वीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकै को जन त्रिभुवनमें ॥ वीतराग० ॥ टेक ॥ तुमरे अतट चतुष्टय प्रगट्यो, निःशेषावरनच्छय छिनमें । मेघ पटल विघटनतैं प्रगटत, जिमि मार्तंड प्रकाश गगनमें ॥ वीतराग० ॥ १ ॥ अप्रमेय ज्ञेयनके ज्ञायक, नहिं परिनमत तदपि ज्ञेयनमें । देखत नयन अनेकरूप जिमि, मिलत नहीं पुनि निज विषयनमें ॥ वीतराग० ॥२॥ निज उपयोग आपनै स्वामी, गाल दिया निश्चल आपनमें । है असमर्थ वाह्य निकसनको, लवन घुला जैसैं जीवनमें[1] ॥ वीतराग० ॥ ३ ॥ तुमरे भक्त परम सुख पावत, परत अभक्त अनंत दुखनमें । जैसो मुख देखो तैसौ है, भासत जिम निर्मल दरपनमें ॥ वीतराग० ॥ ४ ॥ तुम कषाय विन परम शांत हो, तदपि दक्ष कर्मारिहतनमें । जैसे अतिशीतल तुषार पुनि, जार देत द्रुम भारि गहनमें ॥ वीतराग० ॥ ५ ॥ अव तुम रूप

१ जीवन शब्दका अर्थ जल भी होता है ।

जथारथ पायो, अब इच्छा नहिं भव भ्रमनमें । भागचन्द अमृतरस पीकर, फिर को चाहै विष निज मनमें ॥ वीतराग० ॥ ३ ॥

१२

राग दुमरी ।

बुधजन पक्षपात तज देखो, साँचा देव कौन है इनमें ॥ बुधजन० ॥ टेक ॥ ब्रह्मा दंड कमंडलधारि, स्वांग धरे बहि सुरनारिनमें । मृगछाला माला मौंजी पुनि, विषयासक्त निवास नलिनमें ॥ बुधजन० ॥ १ ॥ शंभू खट्वांगसहित पुनि, गिरिजा भोगमगन निशदिनमें । हस्त कपाल व्याल भूषन पुनि, रुंडमाल तन भस्म मलिनमें ॥ बुधजन० ॥ २ ॥ विष्णु चक्रधर मदनबानवश, लज्जा तजि रमता गोपिनमें । क्रोधानल ज्वाजल्यमान पुनि, तिनके होत प्रचंड अरिनमें ॥ बुधजन० ॥ ३ ॥ श्रीअरहंत परम वैरागी, दूषन लेश प्रवेश न जिनमें । भागचंद इनको स्वरूप यह, अब कहो पूज्यपनो है किनमें ? ॥ बुधजन० ॥ ४ ॥

१३

अति संक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिनाम बखानें ॥ अति० ॥ टेक ॥ तीव्र कषाय उदयमें भावित, दर्वित हिंसादिक अघ ठाने । सो संक्लेश भावफल नरकादिक गति दुख भोगत अस-

हाने ॥ अति० ॥ १ ॥ शुभ उपयोग कारननमें जो, रागकषाय मंद उदयाने । सो विशुद्ध तसु फल इंद्रादिक, विभव समाज सकल परमाने ॥ अति० ॥ २ ॥ परकारन मोहादिकतैं च्युत, दरसन ज्ञान चरन रस पाने । सो है शुद्ध भाव तसु फलतैं, पहुँचत परमानंद ठिकाने ॥ अति संक्ले० ॥ ३ ॥ इनमें जुगल बंधके कारन, परद्रव्याश्रित हेयप्रमाने । 'भागचंद' स्वसमय निज हित लखि, तामैं रम रहिये भ्रम हाने ॥ अति० ॥ ४ ॥

१४

उग्रसेन गृह व्याहन आये, समदविजयके लाला ये ॥ उग्रसेन० ॥ टेक ॥ अशरन पशु आक्रंदन लखिकै, करुना भाव उपाये । जगत विभूति भूति सम तजिकै, अधिक विराग बढ़ाये ॥ उग्रसेन० ॥ १ ॥ मुद्रा नगन धरि तंद्रा विन, आत्मब्रह्मरुचि लाये । उर्जयंतगिरि शिखरोपरि चढि, शुचि थानकमें थाये ॥ उग्रसेन० ॥२॥ पंचमुष्टि कच लुँच मुंच रज, सिद्धनको शिर नाये । धवल ध्यान पावक ज्वालातैं, करम कलंक जलाये ॥ उग्र० ॥ ३ ॥ वस्तु समस्त हस्तरेखावत, जुगपत ही दरसाये । निरवशेष विध्वस्त कर्मकर, शिवपुरकाज सिधाये ॥ उग्रसेन० ॥ ४ ॥ अव्याबाध अगाध बोधमयतत्रानंद सुहाये । जगभूषन दूषनविन स्वामी, भागचंद गुन गाये ॥ उग्रसेन० ॥ ५ ॥

१५

राग चर्चरी ।

सांची तो गंगा यह वीतरागवानी, अविच्छन्न धारा निज धर्मकी कहानी ॥ सांची० ॥ टेक ॥ जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी, जहां नहीं संशयादि पंककी निशानी ॥ सांची० ॥ १ ॥ सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी, संतचित मरालवृंद रमैं नित्य ज्ञानी ॥ सांची० ॥ २ ॥ जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्रानी, भागचंद्र निहचै घटमाहिं या प्रमानी॥ सांची० ॥२॥

१६

राग प्रभाती ।

प्रभु तुम मूरत दृगसों निरखै हरखै मोरो जीयरा ॥ प्रभु तुम० ॥ टेक ॥ भुजत कषायानल पुनि उपजै, ज्ञानसुधारस सीयरा ॥ प्रभु तुम० ॥ १ ॥ वीतरागता प्रगट होत है, शिवथल दीसै नीयरा ॥प्रभु तुम० ॥२॥ भागचंद तुम चरन कमलमें, वसत संतजन हीयरा ॥ प्रभु ० ॥ ३ ॥

१७

राग प्रभाती ।

अरे हो जियरा धर्ममें चित्त लगाय रे ॥ अरे हो० ॥ टेक ॥ विषय विषसम जान भौंदू, वृथा क्यों लुभाय ॥ अरे हो० ॥ १ ॥ संग भार विषाद तोकौं, करत

क्या नहिं भाय रे। रोग-उरग-निवास-बामी, कहा नहिं यह काय रे॥ अरे हो०॥ २॥ काल हरिकी गर्जना क्या, तोहि सुन न पराय रे। आपदा भर नित्य तोकों, कहा नहीं दुःख दाय रे॥ अरे हो०॥ ३॥ यदि तोहि कहा नहीं दुख, नरकके असहाय रे। नदी वैतरनी जहां जिय, परै अति विललाय रे॥ अरे हो० ॥ ४॥ तन धनादिक घनपटल सम, छिनकमांहीं विलाय रे। भागचंद सुजान इमि जड़-कुल-तिलक गुन गाय रे॥ अरे हो०॥ ५॥

१८

श्रीजिनवरपद ध्यावैं जो नर श्रीजिनवर पद ध्यावैं ॥ टेक ॥ तिनकी कर्मकालिमा विनशै, परम ब्रह्म हो जावैं। उपल अग्नि संजोग पाय जिमि, कंचन विमल कहावैं॥ श्रीजिनवर०॥ १॥ चन्द्रोज्वल जस तिनको जगमें, पंडित जन नित गावैं। जैसे कमलसुगंध दशोंदिश, पवन सहज फैलावैं॥ श्रीजिनवर०॥ २॥ तिनहिं मिलनको मुक्ति सुंदरी चित अभिलाषा ल्यावै। कृषिमें तृण जिम सहज ऊपजै त्यों स्वर्गादिक पावै॥ श्रीजिनवर०॥३॥ जनमजरामृत दावानल ये; भाव सलिलतैं बुझावैं। भागचन्द कहाँ ताईं वरनैं, तिनहिं इंद्र शिर नावैं॥ श्रीजिनवर०॥ ४॥

१९

राग बिलावल ।

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥ टेक ॥ स्वजन कुटुंबी जन तू पोषै, तिनको होय सदैव गुलाम । सो तो हैं स्वारथके साथी, अंतकाल नाहिं आवत काम ॥ सुमर सदा० ॥ १ ॥ जिमि मरीचिकामें मृग भटकै, परत सो जब ग्रीषम अति घाम । तैसे तू भवमाहीं भटकै, धरत न इक छिनहू विसराम ॥ सुमर० ॥२॥ करत न ग्लानि अब भोगनमें, धरत न वीतराग परिनाम । फिर किमि नरकमाहिं दुख सहसी, जहाँ सुख लेश न आठौं जाम ॥ ३ ॥ तातैं आकुलता अब तजिकै, थिर ह्वै बैठो अपने धाम । भागचंद वसि ज्ञान नगरमें, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥ सुमर० ॥ ४ ॥

२०

राग सारंग ।

श्रीमुनि राजत समता संग । कायोत्सर्ग समायत अंग ॥टेक॥ करतैं नहिं कछु कारज तातैं, आलम्बित भुज कीन अभंग । गमन काज कछु हू नाहिं तातैं, गति तजि छाके निज रसरंग ॥ श्रीमुनि० ॥ १ ॥ लोचनतैं लखिवौ कछु नाहीं, तातैं नासा दृग अचलंग । ...े जोग रह्यो कछु नाहीं, तातैं प्रास इकंत सुचंग

॥श्रीमुनि०॥२॥ तहँ मध्यान्हमाहिं निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतंग । कैधौं ज्ञान पवनबल प्रज्वलित, ध्यानानलसौं उछलि फुलिंग ॥ श्रीमु० ॥३॥ चित्त निराकुल अतुल उठत जहँ, परमानंद पियूषतरंग । भागचंद ऐसे श्रीगुरुपद, वंदत मिलत स्वपद उत्तंग ॥ श्रीमुनि० ॥४॥

२१

राग गौरी ।

आतम अनुभव आवै जब निज, आतम अनुभव आवै । और कछू न सुहावै, जब निज० ॥ टेक ॥ रस नीरस ह्वै जात ततच्छिन, अच्छ विषय नहीं भावै ॥ आतम०॥ ॥१॥ गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गलप्रीति नसावै॥ आतम० ॥ २ ॥ राग दोष जुग चपल पक्षजुत मन पक्षी मर जावै ॥आतम० ॥३॥ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अंतर न समावै ॥आतम०॥ भागचंद ऐसे अनुभवके हाथ जोरि सिर नावै ॥ आतम० ॥ ४ ॥

२२

राग ईमन ।

महिमा है अगम जिनागमकी ॥टेक॥ जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतमकी॥ महिमा० ॥१॥ रागादिक दुखकारन जानें, त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी । ज्ञान ज्योति जागी घट अंतर, रुचि वाढ़ी पुनि शमदमकी ॥ महि० ॥ २ ॥ कर्म बंधकी भई निरजरा, कारण परंपरा क्रमकी । भागचन्द शिव-

लालच लागो, पहुंच नहीं है जहँ जमकी ॥ महिमा० ॥ ३ ॥

२३

राग ईमन ।

धन धन श्रीश्रेयांसकुमार । तीर्थदान करतार ॥ टेक ॥ प्रभु लखि जाहि पूर्वश्रुत आई, चित हरषाय उदार । नवधा भक्ति समेत ईक्षुरस, प्रासुक दियो अहार ॥ धन० ॥ १ ॥ रतनवृष्टि सुरगन तव कीनी, असित अमोघ सुधार । कल्पवृक्ष पहुपनकी वर्षा, जहँ अलि करत गुँजार ॥ धन० ॥ २ ॥ सुरदुंदुभि सुन्दर अति बाजी, मन्द सुगंधि बयार । धन धन यह दाता इमि नभमें, चहुँदिशि होत उचार ॥ धन० ॥ ३ ॥ जस ताको अमरी नित गावत, चन्द्रोज्ज्वल अविकार । भागचन्द लघुमति क्या बरनै, सो तो पुन्य अपार ॥ धन० ॥ ४ ॥

२४

ऐसे जैनी मुनिमहाराज, सदा उर मो बसो ॥ टेक ॥ तिन समस्त परद्रव्यनिमाहीं, अहंबुद्धि तजि दीनी ॥ गुन अनंत ज्ञानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी ॥ ऐसे० ॥ १ ॥ जे निजबुद्धिपूर्व रागादिक, सकल विभाव निवारैं । पुनि अबुद्धिपूर्वकनाशनको, शक्ति सम्हारैं ॥ ऐसे० ॥ २ ॥ कर्म शुभाशुभ

बंध उदयमें हर्ष विषाद न रावैं। सम्यगदर्शनज्ञान चरनतप, भावसुधारस चाखैं॥ ऐसे० ॥ ३ ॥ परकी इच्छा तजि निजबल सजि, पूरव कर्म खिरावैं। सकल कर्मतैं भिन्न अवस्था सुखमय लखि चित चावैं ॥ ऐसे० ॥ ४ ॥ उदासीन शुद्धोपयोगरत सबके दृष्टा ज्ञाता। बाहिजरूप नगन समताकर, भागचन्द सुखदाता ॥ ऐसे० ॥ ५ ॥

२५

राग जंगला।

तुम गुनमनिनिधि हौ अरहंत ॥ टेक ॥ पार न पावत तुमरो गनपति, चार ज्ञान धरि संत ॥ तुम गुन० ॥ १ ॥ ज्ञानकोष सब दोष रहित तुम, अलख अमूर्ति अचिंत ॥ तुम गुन० ॥ २ ॥ हरिगन अरचत तुम पदवारिज, परमेष्ठी भगवंत ॥ तुम गुन० ॥ ३ ॥ भागचन्दके घटमंदिरमें, वसहु सदा जयवंत ॥ तुम गुन० ॥ ४ ॥

२६

राग जंगला।

शांति वरन मुनिराई वर लखि। उत्तर गुनगन सहित (मूल गुन सुभग) बरात सुहाई ॥ टेक ॥ तप रथपै आरूढ अनूपम, धरम सुमंगलदाई ॥ शांति वरन० ॥ १ ॥ शिवरमनीको पानिग्रहण करि, ज्ञानानन्द उपाई ॥ शांति वरन० ॥ २ ॥ भागचन्द ऐसे

वनराको, हाथ जोर सिरनाई ॥ शांति वरन० ॥ ३ ॥

२७

राग जंगला।

म्हाकैं जिनमूरति हृदय वसी वसी ॥ टेक ॥ यद्यपि करुनारसमय तद्यपि, मोह शत्रु हनि असी असी ॥ म्हा० ॥ १ ॥ भामंडल ताको अति निर्मल, निःकलंक जिमि ससी ससी ॥ म्हाकैं० ॥ २ ॥ लखत होत अति शीतल मति जिमि, सुधा जलधिमें धसी धसी ॥ म्हाकैं० ॥ ३ ॥ भागचन्द जिस ध्यानमंत्रसों, ममता नागिन नसी नसी ॥ म्हाकैं० ॥ ४ ॥

२८

राग खमाच।

ज्ञानी मुनि छै ऐसे स्वामी गुनरास ॥ टेक ॥ जिनके शैलनगर मंदिर पुनि, गिरिकंदर सुखवास ॥ ॥ ज्ञानी० ॥ १ ॥ निःकलंक परंजक शिला पुनि, दीप मृगांक उजास ॥ ज्ञा० ॥ २ ॥ मृग किंकर करुना वनिता पुनि, शील सलिल तपग्रास ॥ ज्ञानी० ॥ ३ ॥ भागचन्द ते हैं गुरु हमरे, तिनहीके हम दास ॥ ज्ञानी० ॥ ४ ॥

२९

राग खमाच।

श्रीगुरु है उपगारी ऐसे वीतराग गनधारी वे ॥

टेक ॥ स्वानुभूति रमनी सँग कीड़ैं, ज्ञानसंपदा भारी वे ॥ श्रीगुरु० ॥ १ ॥ ध्यान पिंजरामें जिन रोकौ चित खग चंचलचारी वे ॥ श्रीगुरु है० ॥ २ ॥ तिनके चरनसरोरुह ध्यावै, भागचन्द अघटारी वे ॥ श्रीगुरु० ॥ ३ ॥

३०

राग खमाच।

सारौ दिन निरफल खोयबौ करै छै। नरभव लहिकर प्रानी विनज्ञान, सारौ दिन नि० ॥ टेक ॥ परसंपति लखि निजचितमाहीं, विरथा मूरख रोयबौ करै छै ॥ सारौ० ॥ १ ॥ कामानलतैं जरत सदा ही, सुन्दर कामिनी जोयबौ करै छै ॥ सारौ० ॥ २ ॥ जिनमत तीर्थस्थान न ठानै, जलसौं पुद्गल धोयबा करै छै ॥ सारौ० ॥ ३ ॥ भागचन्द इमि धर्म विना शठ, मोहनींदमें सोयबौ करै छै ॥ सारौ० ॥ ४ ॥

३१

राग परज।

सम आराम विहारी, साधुजन सम आराम विहारी ॥ टेक ॥ एक कलपतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी ॥ एक कंठविच सर्प नाखिया, क्रोध दर्पजुत भारी ॥ राखत एक वृत्ति दोउनमैं, सबहीके उपगारी ॥ सम आरा० ॥ १ ॥ सारंगी हरिवाल चुखावै, पुनि

मराल मंजारी। व्याघ्रबालकरि सहित नन्दिनी, व्याल नकुलकी नारी॥ तिनके चरनकमल आश्रयतैं, अरिता सकल निवारी॥ सम आ०॥ २॥ अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताकौ धाम अपारी। काम धरा विव गढी सो चिरतैं, आतमनिधि अविकारी॥ खनत ताहि लै कर करमें जे, तीक्षण बुद्धि कुदारी॥सम आराम०॥३॥ निज शुद्धोपयोगरस चाखत, परममता न लगारी। निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी॥ भागचंद ऐसे श्रीपति प्रति, फिर फिर ढोक हमारी॥ सम आराम वि०॥ ४॥

३२

राग सोरठ।

इष्टजिन केवली म्हाकै इष्टजिन केवली, जिन सकल कलिमल दली॥टेक॥ शान्ति छबि जिनकी विमल जिमि, चन्द्रदुति मंडली। सत-जन-मन-केकि-तर्पन सघन घनपटली॥ इष्टजिन के०॥ १॥ स्यात्पदांकित धुनि सुजिनकी, वदनतें निकली। वस्तुतत्त्वप्रकाशिनी जिमि, भानु किरनावली॥ इष्टजिन०॥ २॥ जासुपद अरविंदकी, मकरंद अति निरमली। ताहि घ्रान करै नमित हर,-मुकुट-द्युति-मनि अली॥ इष्टजिन०॥ ३॥ जाहि जजत विराग उपजत, मोहनिद्रा टली। ज्ञान-[illegible]तैं प्रगट लखि, धरत शिववटगली॥ इष्टजिन०

॥ ४ ॥ जासु गुन नहिं पार पावत, बुद्धि ऋद्धि बली । भागचंद सु अलपमति जन,—की तहां क्या चली ॥ इष्टजिन० ॥ ५ ॥

३३

राग सोरठ ।

स्वामी मोहि अपनो जानि तारौ, या विनती अब चित धारौ ॥ टेक ॥ जगत उजागर करुणासागर, नागर नाम तिहारौ ॥ स्वामी मोहि० ॥ १ ॥ भव अटवीमें भटकत भटकत, अब मैं अति ही हारौ ॥ स्वामी मोहि० ॥ २ ॥ भागचन्द स्वच्छन्द ज्ञानमय, सुख अनंत विस्तारौ ॥ स्वामी मोहि० ॥ ३ ॥

३४

राग सोरठ देशी ।

थांकी तो वानीमें हो, निज स्वपरप्रकाशक ज्ञान ॥ टेक ॥ एकीभाव भये जड़ चेतन, तिनकी करत पिछान ॥ थांकी तो० ॥ १ ॥ सकल पदार्थ प्रकाशत जामें, मुकुर तुल्य अमलान ॥ थांकी तो० ॥२॥ जग चूड़ामनि शिव भये ते ही, तिन कीनों सरधान ॥ थांकी तो० ॥ ३ ॥ भागचंद बुधजन ताहीको, निशदिन करत बखान ॥ थांकी तो० ॥ ४ ॥

३५

राग सोरठ मल्हारमें ।

गिरिवनवासी मुनिराज, मन बसिया म्हारैं हो

॥टेक॥ कारनविन उपगारी जगके, तारन-तरन-जिहाज ॥गिरिवन० ॥ १ ॥ जनम-जरामृत-गद्-गंजनको, करत विवेक इलाज ॥ गिरिवन० ॥२॥ एकाकी जिमि रहत केसरी, निरभय स्वगुन समाज ॥ गिरिवन० ॥ ३ ॥ निर्भूषन निर्वसन निराकुल, सजि रतनत्रय साज ॥ गिरिवन० ॥४॥ ध्यानाध्ययनमाहिं तत्पर नित, भागचन्द शिवकाज ॥ गिरिवन० ॥ ५ ॥

३६

राग सोरठ ।

म्हांकै घट जिनधुनि अब प्रगटी ॥टेक॥ जागृत दशा भई अब मेरी, सुप्त दशा विघटी । जगरचना दीसत अब मोकों, जैसी रँहटघटी ॥ म्हांकै घट० ॥ १ ॥ विभ्रम तिमिर-हरन निज दृगकी, जैसी अँजनवटी ॥ तातैं स्वानुभूति प्रापतितैं, परपरनति सब हटी ॥ म्हांकै घट० ॥ २ ॥ ताके विन जो अवगम चाहै, सो तो शठ कपटी । तातैं भागचन्द निशिवासर, इक ताहीको रटी ॥ म्हांकै घट० ॥ ३ ॥

३७

राग सोरठ ।

आवै न भोगनमें तोहि गिलान ॥ टेक ॥ तीरथनाथ भोग तजि दीनें, तिनतैं मन भय आन । तू तिनतैं कहुँ डरपत नाहीं, दीसत अति बलवान ॥ आवै न० ॥ १ ॥ इन्द्रियतृप्ति काज तू भोगै,

महा अघखान। सो जैसे घृतधारा डारै, पावकज्वाल बुझान॥ आवै न०॥ २॥ जे सुख तो तीछन दुखदाई, ज्यों मधुलिप्त-कृपान। तातैं भागचन्द इनको तजि, आत्मस्वरूप पिछान॥ आवै न०॥ ३॥

३८

राग सोरठ।

स्वामीजी तुम गुन अपरंपार, चन्द्रोज्ज्वल अविकार॥ टेक॥ जबै तुम गर्भमाहिं आये, तबै सब सुरगन मिलि आये। रतन नगरीमें बरषाये, अमित अमोघ सुढार॥ स्वामीजी०॥ १॥ जन्म प्रभु तुमने जब लीना, न्हवन मंदिरपै हरि कीना। भक्ति करि सची सहित भीना, बोला जयजयकार॥ स्वामीजी०॥ २॥ जगत छनभंगुर जब जाना, भये तब नगनवृत्ती बाना। स्तवन लौकांतिकसुर ठाना, त्याग राजको भार॥ स्वामीजी०॥ ३॥ घातिया प्रकृति जबै नासी, चराचर वस्तु सबै भासी। धर्मकी वृष्टी करी खासी, केवलज्ञान भँडार॥ स्वामीजी०॥ ४॥ अघाती प्रकृति सुविघटाई, मुक्तिकान्ता तब ही पाई। निराकुल आनंद असहाई, तीनलोकसरदार॥ स्वामीजी०॥ ५॥ पार गनधर हू नहिं पावै, कहां लगि भागचन्द गावै। तुम्हारे चरनांबुज ध्यावै, भवसागर सों तार॥ स्वामीजी०॥ ६॥

३९

राग मल्हार।

मान न: कीजियें हो परवीन ॥ टेक ॥ जाय पलाय चंचला कमला, तिष्ठै दो दिन तीन। धनजोवन छन-भंगुर सब ही, होत सुछिन छिन छीन ॥ मान न० ॥ १ ॥ भरत नरेन्द्र खंड-खट-नायक, तेहु भये मद हीन। तेरी बात कहा है भाई, तू तो सहज हि दीन ॥ मान न० ॥२॥ भागचन्द मार्दव-रससागर,-माहिं होहु लवलीन। तातैं जगतजालमें फिर कहुं, जनम न होय नवीन ॥ मान न० ॥ ३ ॥

४०

राग मल्हार।

अरे हो अज्ञानी तूने कठिन मनुषभव पायो ॥ टेक॥ लोचनरहित मनुषके करमें, ज्यों बटेर खग आयो ॥ अरे हो० ॥ १ ॥ सो तू खोवत विषयनमाहीं, धरम नहीं चित लायो ॥ अरे हो० ॥ २ ॥ भागचन्द्र उपदेश मान अब, जो श्रीगुरु फरमायो ॥ अरे हो० ॥३॥

४१

राग मल्हार।

वरसत ज्ञान सुनीर हो, श्रीजिनमुखघनसों ॥ टेक ॥ शीतल होत सुबुद्धिमेदिनी, मिटत भवातप-पीर ॥ वरसत० ॥ १ ॥ स्यादवाद नयदामिनि दमकै, ।त निनाद गँभीर ॥ वरसत० ॥ २ ॥ करुनानदी

वसै चहुं दिशितैं, भरी सो दोई तीर ॥ वरसत० ॥३॥ भागचन्द अनुभवमंदिरको, तजत न संत सुधीर ॥ वरसत० ॥ ४ ॥

४२

राग मल्हार ।

मेघघटासम श्रीजिनवानी ॥ टेक ॥ स्यात्पद चपला चमकत जामें, वरसत ज्ञान सुपानी ॥ मेघघटा० ॥ १ ॥ धरमसस्य जातैं बहु बाढ़ें, शिवआनँदफलदानी॥ मेघघटा० ॥ २ ॥ मोहन धूल दवी सब यातैं, क्रोधानल सुबुझानी ॥ मेघघटा० ॥ ३ ॥ भागचन्द बुधजन केकीकुल, लखि हरखै चितज्ञानी ॥ मेघघटा० ॥ ४ ॥

४३

राग धनाश्री ।

प्रभू थांकों लखि ममचित हरषायो ॥ टेक ॥ सुंदर चिंतारतन अमोलक, रंकपुरुष जिमि पायो ॥ प्रभू० ॥ १ ॥ निर्मलरूप भयो अब मेरो, भक्तिनदीजल न्हायो प्रभू० ॥ २ ॥ भागचन्द अब मम करतलमें अविचल शिवथल आयो ॥ प्रभू० ॥ ३ ॥

४४

राग मल्हार ।

प्रभू म्हाकी सुधि, करुना करि लीजे ॥ टेक ॥ मेरे इक अवलम्बन तुम ही, अब न विलम्ब करीजे ॥ प्रभू० ॥ १ ॥ अन्य कुदेव तजे सब मैंने, तिनतैं

निजगुन छीजे ॥ प्रभू० ॥ २ ॥ भागचन्द तुम शरन लियो है, अब निश्चलपद दीजे ॥ प्रभू० ॥ ३ ॥

४५

राग कलिंगड़ा ।

ऐसे साधू सुगुरु कब मिल हैं ॥ टेक ॥ आप तरें अरु परको तारैं, निष्प्रेही निरमल हैं ॥ ऐसे० ॥ १ ॥ तिलतुषमात्र संग नहिं जाके, ज्ञान-ध्यान-गुण--बल हैं ॥ ऐसे साधू० ॥ २ ॥ शान्तदिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दिरतुल्य अचल हैं ॥ ऐसे० ॥ ३ ॥ भागचन्द तिनको नित चाहै, ज्यों कमलनिको अल है ॥ ऐसे० ॥ ४ ॥

४६

राग कहरवा कलिंगड़ा ।

केवल जोति सुजागी जी, जब श्रीजिनवरके ॥ टेक ॥ लोकालोक विलोकत जैसे, हस्तामल बड़भागी जी ॥ के० ॥ १ ॥ हार-चूडामनिशिखा सहज ही, नम्र भूमितें लागी जी ॥ केवल० ॥ २ ॥ समवसरन रचना सुर कीन्हीं, देखत भ्रम जन त्यागी जी ॥ केवल० ॥ ३ ॥ भक्तिसहित अरचा तब कीन्हीं, परम धरम अनुरागी जी ॥ केवल० ॥ ४ ॥ दिव्यध्वनि सुनि सभा दुवादश, आनँदरसमें पागी जी ॥ केवल० ॥ ५ ॥ [भा]गचंद प्रभुभक्ति चहत है, और कछू नहिं मांगी [जी] ॥ केवल० ॥ ६ ॥

४७

ख्याल।

विन काम ध्यानमुद्राभिराम, तुम हो जगनायकजी ॥ टेक ॥ यद्यपि, वीतरागमय तद्यपि, हो शिवदायक जी ॥ विन काम० ॥ १ ॥ रागी देव आप ही दुखिया, सो क्या लायक जी ॥ विन काम० ॥ २ ॥ दुर्जय मोह शत्रु हनवेको, तुम वच शायकजी ॥ विन काम० ॥ ३ ॥ तुम भवमोचन ज्ञानसुलोचन, केवलक्षायकजी ॥ विन काम० ॥ ४ ॥ भागचन्द भागनतैं प्रापति, तुम सब ज्ञायकजी ॥ विन काम० ॥ ५ ॥

४८

राग काफी।

अहो यह उपदेशमाहीं, खूब चित्त लगावना। होयगा कल्यानतरा, सुख अनंत बढ़ावना ॥ टेक ॥ रहित दूषन विश्वभूषन, देव जिनपति ध्यावना। गगनवत निर्मल अचल मुनि, तिनहिं शीस नवावना ॥ अहो० ॥ १ ॥ धर्म अनुकंपा प्रधान, न जीव कोई सतावना। सप्ततत्त्वपरीक्षना करि, हृदय श्रद्धा लावना ॥ अहो० ॥ २ ॥ पुद्गलादिकतैं पृथक्, चेतन्य ब्रह्म लखावना। या विधि विमल सम्यक्त धरि, शंकादि पंक बहावना ॥ अहो० ॥ ३ ॥ रुचैं भव्यनको वचन जे, शठनको न सुहावना। चन्द्र लखि जिमि कुमुद

विकसै, उपल नहिं विकसावना ॥ अहो० ॥ ४ ॥ भागचंद विभावतजि, अनुभव स्वभावित भावना । या शरण न अन्य जगता–रन्यमें कहुँ पावना ॥ अहो० ॥ ५ ॥

४९

राग काफी ।

ऐसे विमल भाव जब पावै, तब हम नरभव सुफल क हावै ॥ क ॥ दरशबोधमय निज आतम लखि, परद्रव्यनिको नहिं अपनावै । मोह–राग–रुष अहित जान तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै ॥ ऐसे० ॥ १ ॥ कर्म शुभाशुभबंध उदयमें, हर्ष विषाद चित्त नहिं ल्यावै । निज-हित-हेत विराग ज्ञान लखि, तिनसों अधिक प्रीति उपजावै ॥ ऐसे० ॥ २ ॥ विषय चाह तजि आत्मवीर्य सजि, दुखदायक विधिबंध खिरावै । भागचन्द शिवसुख सब सुखमय, आकुलता विन लखि चित चावै ॥ ऐसे० ॥ ३ ॥

५०

राग काफी ।

प्रभूपै यह वरदान सुपाऊं, फिर जगकीचबीच नहिं आऊं ॥ टेक ॥ जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप फल सुन्दर ल्याऊँ । आनँदजनक कनकभाजन १९, अर्घ अनर्घ बनाय चढाऊँ ॥ प्रभूपै० ॥ १ ॥

आगमके अभ्यासमाहिं पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊं। संतनकी संगति तजिकै मैं, अंत कहूं इक छिन नहिं जाऊं ॥ प्रभूपै० ॥ २ ॥ दोषवादमें मौन रहूं फिर, पुण्यपुरुषगुन निशिदिन गाऊं। मिष्ट स्पष्ट सबहिसों भाषौं, वीतराग निज भाव बढ़ाऊं ॥ प्रभूपै० ॥ ३ ॥ बाहिजदृष्टि ऐंचके अन्तर, परमानन्द-स्वरूप लखाऊं। भागचन्द शिवप्राप्त न जौलौं तौं लौं तुम चरनांबुज ध्याऊं ॥ प्रभूपै० ॥ ४ ॥

५१

लावनी।

धन्य धन्य है घड़ी आजकी, जिनधुनि श्रवन परी। तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी ॥ टेक ॥ जड़तैं भिन्न लखी चिन्मूरति, चेतन स्वरस भरी। अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, परमें सब परिहरी ॥ धन्य० ॥ १ ॥ पापपुन्य विधिबंध अवस्था, भासी अतिदुखभरी। वीतराग विज्ञानभावमय, परिनत अति विस्तरी ॥ धन्य० ॥ २ ॥ चाह-दाह विनसी बरसी पुनि, समतामेघझरी। बाढ़ी प्रीति निराकुल पदसों, भागचन्द हमरी ॥ ३ ॥

५२

लावनी।

सफल है धन्य धन्य वा घरी, जब ऐसी अति निर्मल

होसी, परमदशा हमरी ॥ टेक ॥ धारि दिगंबरदीक्षा सुंदर, त्याग परिग्रह अरी । वनवासी कर पात्र परीषह, सहि हों धीर धरी ॥ सफल० ॥ १ ॥ दुर्धर तप निर्भर नित तप हौं, मोह कुवृक्ष करी । पंचाचारक्रिया आचर हौं, सकल सार सुथरी ॥ सफल० ॥ २ ॥ विभ्रमतापहरन झरसी निज, अनुभव-मेघ झरी । परम शान्त भावनकी तातैं, होसी वृद्धि खरी ॥ सफल० ॥ ३ ॥ त्रेसठिप्रकृति भंग जब होसी, जुत त्रिभंग सगरी । तब केवलदर्शनविबोध सुख, वीर्यकला पसरी ॥ सफल० ॥ ४ ॥ लखि हो सकल द्रव्य गुनपर्जय, परनति अति गहरी । भागचन्द्र जब सहजहि मिल है, अचल मुकति नगरी ॥ सफल० ॥ ५ ॥

५३

राग सोरठ ।

जे दिन तुम विवेक विन खोये ॥ टेक ॥ मोह वारुणी पी अनादितैं, परपदमें चिर सोये । सुखकरंड चितपिंड आपपद, गुन अनंत नाहिं जोये । जे दिन० ॥ १ ॥ होय बहिर्मुख ठानि राग रुख, कर्म बीज बहु बोये । तसु फल सुख दुख सामिग्री लखि, चितमें हरषे रोये ॥ जे दिन० ॥ २ ॥ धवल ध्यान शुचि सलिलपूरतें, आस्रव मल नहिं धोये । परद्रव्यनिकी चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥

॥ ३ ॥ अब निजमें निज जान नियत तहां, निज परिनाम समोये। यह शिवमारग समरससागर, भागचन्द हित तो ये ॥ जे दिन० ॥ ४ ॥

५४

राग दादरा।

धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान ॥ टेक ॥ रहित सप्त भय तत्त्वारथमें, चित्त न संशय आन। कर्म कर्ममलकी नहिं इच्छा, परमें धरत न ग्लानि ॥ धनि० ॥ १ ॥ सकल भावमें मूढ़दृष्टितजि, करत साम्यरसपान। आतम धर्म बढ़ावैं वा, परदोष न उचरैं वान ॥ धनि० ॥ २ ॥ निज स्वभाव वा, जैनधर्ममें, निजपरथिरता दान,। रत्नत्रय महिमा प्रगटावैं, प्रीति स्वरूप महान ॥ धनि० ॥ ३ ॥ ये वसु अंगसहित निर्मल यह, समकित निज गुन जान। भागचन्द शिवमहल चढ़नको, अचल प्रथम सोपान ॥ धनि० ॥ ४ ॥

५५

राग जोड़ा।

ज्ञानी जीवनके भय होय, न या परकार ॥ टेक ॥ इह भव परभव अन्य न मेरो, ज्ञानलोक मम सार। मैं वेदक इक ज्ञानभावको, नहिं परवेदनहार ॥ ज्ञानी० ॥ १ ॥ निज सुभावको नाश न तातैं, चहिये नहिं

रखवार। परमगुप्त निजरूप सहज ही, परका तहँ न सँचार॥ ज्ञानी०॥ २॥ चितस्वभाव निज प्रान तासको, कोई नहीं हरतार। मैं चितपिंड अखंड न तातैं, अकस्मात भयभार॥ ज्ञानी०॥ ३॥ होय निशंक स्वरूप अनुभव, जिनके यह निरधार। मैं सो मैं पर सो मैं नाहीं, भागचन्द भ्रम डार॥ ज्ञानी० ॥ ४॥

५८

राग जोड़ा।

मैं तुम शरन लियो, तुम सांचे प्रभु अरहंत॥ टेक॥ तुमरे दर्शन ज्ञान मुकरमें, दरशज्ञान झलकंत। अतुल निराकुल सुख आस्वादन, वीरज अरज (?) अनंत॥ मैं तुम०॥ १॥ रागद्वेष विभाग नाश भये, परम समरसी संत। पद देवाधिदेव पायो किय, दोष क्षुधादिक अंत॥ मैं तुम०॥ २॥ भूषन वसन शस्त्र कामादिक, करन विकार अनंत। तिन तुम परमौदारिक तन, मुद्रा सम शोभंत॥ मैं तुम० ॥ ३॥ तुम वानीतैं धर्मतीर्थ जग, माहिं त्रिकाल चलंत। निजकल्याणहेतु इन्द्रादिक, तुम पदसेव करंत॥ मैं तुम०॥ ४॥ तुम गुन अनुभवतैं निज पर, दरसत अगम अचिंत। भागचन्द निजरूपप्राप्ति, पावैं हम भगवंत॥ मैं तुम०॥ ५॥

५७

राग गौरी।

आतम अनुभव आवै जब निज, आतम अनुभव आवै। और कछू न सुहावै जब निज, आतम अनुभव आवै ॥ टेक ॥ जिनआज्ञाअनुसार प्रथम ही, तत्त्व प्रतीति अनावै। वरनादिक रागादिकनैं निज, चिह्न भिन्न फिर ध्यावै ॥ आतम० ॥ १ ॥ मतिज्ञान फरसादि विषय तजि, आतम सम्मुख धावै। नय प्रमान निक्षेप सकल श्रुत, ज्ञानविकल्प नसावै ॥ आतम० ॥ २ ॥ चिदहं शुद्धोऽहं इत्यादिक, आपमाहिं बुध आवै। तन पै वज्रपात गिरतैं हू, नेकु न चित्त डुलावै ॥ आतम० ॥ ३ ॥ स्वसंवेद आनंद बढ़ै अति, वचन कह्यो नहिं जावै। देखन जानन चरन तीन विच, इक स्वरूप ठहरावै ॥ आतम० ॥ ४ ॥ चितकर्ता चित कर्मभाव चित, परनति क्रिया कहावै। साधक साध्य ध्यान ध्येयादिक, भेद कछू न दिखावै ॥ आतम० ॥ ५ ॥ आत्मप्रदेश अदृष्ट तदपि, रसस्वाद प्रगट दरसावै। ज्यों मिश्री दीसत न अंधको, सपरस मिष्ट चखावै ॥ आतम० ॥ ६ ॥ जिन जीवनके, संसृत पारावार पार निकटावै। भागचंद ते सार अमोलक, परम रतन वर पावै ॥ आतम० ॥ ७ ॥

५८

राग दादरा ।

चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै ॥ टेक ॥ आप अभंग तथापि अंगके, संग महा दुख (पुंज) वहै । लोहपिंड संगति पावक ज्यों, दुर्धर घनकी चोट सहै ॥ चेतन० ॥ १ ॥ नामकर्मके उदय प्राप्त नर, नरकादिक परजाय धरै । तामें मान अपनपौ विरथा, जन्म जरा मृतु पाय डरै ॥ चेतन० ॥ २ ॥ कर्ता होय रागरुष ठानै, परको साक्षी रहत न यहै । व्याप्य सुव्यापक भाव विना किमि, परको करता होत न यहै ॥ चे० ॥ ३ ॥ जब भ्रमनींद त्याग निजमें निज, हित हेत सम्हारत है । वीतराग सर्वज्ञ होत तब, भागचन्द हितसीख कहै ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

५९

दोहा ।

विश्वभावव्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप ।
ज्ञानानंदमयी सदा, जयवंतो जिनभूप ॥ १ ॥

छन्द चाल ।

सफली मम लोचनद्वंद्व । देखत तुमको जिनचंद
मम तनमन शीतल एम । अमृतरस सींचत जेम ॥२॥
—म बोध अमोघ अपारा । दर्शन पुनि सर्व निहारा ॥
।नंद अतिन्द्रिय राजै । बल अतुल स्वरूप न त्याजै

॥३॥ इत्यादिक स्वगुन अनन्ता । अन्तर्लक्ष्मी भगवंता । बाहिज विभूति बहु सोहै । बरनन समर्थ कवि को है ॥४॥ तुम वृच्छ अशोक सुस्वच्छ । सब शोकहरनको इच्छ । तहां चंचरीक गुंजारैं । मानों तुम स्तोत्र उचारैं ॥५॥ शुभ रत्नमयूख विचित्र । सिंहासन शोभ पवित्र । तह वीतराग छवि सोहै । तुम अंतरीछ मनमोहै ॥६॥ वर कुन्दकुन्द अवदात । चामरव्रज सर्व सुहात । तुम ऊपर मघवा ढारै । धर भक्ति भाव अघ टारै ॥ ७ ॥ मुक्ताफल माल समेत । तुम ऊर्ध्व छत्रत्रय सेत । मानों तारान्वित चन्द । त्रय मूर्ति धरी द्युति वृन्द ॥८॥ शुभ दिव्य पटह बहु बाजैं । अतिशय जुत अधिक विराजैं । तुमरो जस घोकैं मानौं । त्रैलोक्यनाथ यह जानौं ॥९॥ हरिचन्दन सुमन सुहाये । दशदिशि सुगंधि महकाये ॥ अलिपुंज विगुंजत जामैं । शुभ वृष्टि होत तुम सामैं ॥१०॥ भामंडल दीप्ति अखंड । छिप जात कोट मार्तंड । जग लोचनको सुखकारी । मिथ्यातमपटल निवारी ॥११॥ तुमरी दिव्यध्वनि गाजै । विन इच्छा भविहित काजै । जीवादिक तत्त्वप्रकाशी । भ्रमतमहर सूर्यकला-सी ॥१२॥ इत्यादि विभूति अनंत । बाहिज अतिशय अरहंत । देखत मन भ्रमतम भागा । हित अहित ज्ञान उर जागा॥१३॥तुम सब लायक उपगारी । मैं दीन दुखी संसारी । तातैं सुनिये यह अरजी । तुम शरन लियो जिनवरजी ॥१४॥ मैं जीवद्रव्य विन अंग । लागो अनादि विधि संग । ता निमित पाय दुख पाये । हम मिथ्यातादि

महा ये ॥१५॥ निज गुण कबहूं नहिं भाये । सब दार्थ अपनाये । रति अरति करी सुखदुखमें । व्है करि निजधर्म विमुख में ॥१६॥ पर–चाह–दाह नित दाहो । नहिं शांत सुधा अवगाहौ ॥ पशु नारक नर सुरगतमें चिर भ्रमत भयो भ्रममतमें ॥१७॥ कीनें बहु जामन मरना । नहिं पायो सांचो शरना । अब भाग उदय मो आयो । तुम दर्शन निर्मल पायो ॥ १८ ॥ मन शांत भयो उर मेरो । बाढ़ो उछाह शिवकेरो । परविषयरहित आनन्द । निज रस चाखो निरद्वन्द ॥१९॥ मुझ काजतनें कारज हो । तुम देव तरन तारन हो ॥ तातैं ऐसी अब कीजे । तुम चरन भक्ति मो दीजे ॥ २० ॥ दृग–ज्ञान–चरन परिपूर । पाऊं निश्चय भवचूर । दुखदायक विषय कषाय । इनमें परनति नहिं जाय ॥ २१ ॥ सुरराज समाज न चाहों । आतम समाधि अवगाहों । पर इच्छा तो मनमानी पूरो सब केवलज्ञानी ॥ २२ ॥

दोहा ।

गनपति पार न पावहीं, तुम गुनजलधि विशाल ।
भागचन्द तुव भक्ति ही, करै हमैं वाचाल ॥ २३

६०

गीतिका ।

तुम परम पावन देख जिन, अरि

विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग-जलवीच त्रिभुवन, कमलवत प्रतिभासनं॥ आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। वल अतुल कलित स्वभावतैं नहिं, खलित गुन अमिलित थये॥ १॥ सव राग रुष हनि परम श्रवन स्वभाव घन निर्मल दशा। इच्छारहित भवहित खिरत, वच सुनत ही भ्रमतम नशा। एकान्त--गहन--सुदहन स्यात्पद, वहन मय निजपर दया। जाके प्रसाद विषाद विन, मुनिजन सपदि शिवपद लहा॥ २॥ भूषन वसन सुमनादिविन तन, ध्यानमय मुद्रा दिपै। नासाग्र नयन सुपलक हलय न, तेज लखि खगगन छिपै॥ पुनि वदन निरखत प्रशम जल, वरखत सुहरखत उर धरा। वुधि स्वपर परखत पुन्यआकर, कलिकलिल दुरखत जरा॥ ३॥ इत्यादि वहिरंतर असाधारन, सुविभवनिधान जी। इन्द्रादिवंद पदारविंद, अनिंद तुम भगवान जी। मैं चिर दुखी परचाहतैं, तुम धम नियत न उर धरो॥ परदेवसेव करी वहुत, नहिं काज एक तहां सरो॥ ४॥ अव भागचन्द्रउदय भयो, मैं शरन आयो तुम तने। इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपद दायक वुध भने॥ परमाहिं इष्ट-अनिष्ट-मति तजि, मगन निज गुनमें रहों। दृग-ज्ञान-चर संपूर्ण पाऊं, भागचंद न पर चहों॥ ५॥

६१

राग दीपचन्दी।

कीजिये कृपा मोह दीजिये स्वपद, मैं तो तेरो ही शरन लीनों हे नाथ जी॥ टेक॥ दूर करो यह मोह शत्रुको, फिरत सदा जी मेरे साथ जी॥ कीजिये० ॥ १॥ तुमरे वचन कर्मगत-मोचन, संजीवन औषधी काथजी॥ कीजि० ॥ २॥ तुमरे चरन कमल बुध ध्यावत, नावत हैं पुनि निजमाथ जी॥ कीजि०॥३॥ भागचंद मैं दास तिहारो, ठाडो जोरौं जुगल हाथ जी॥ कीजि० ॥ ४॥

६२

राग दीपचन्दी।

निज कारज काहे न सारै रे, भूले प्रानी॥ टेक॥ परिग्रह भारथकी कहा नाहीं, आरत होत तिहारै रे॥ निज० ॥ १॥ रोगी नर तेरी वपुको कहा, तिस दिन नाहीं जारै रे॥ निज का० ॥ २॥ क्रूरकृतांत सिंह कहा जगमें, जीवनको न पछारै रे॥ निज का० ॥ ३॥ करनविषय विषभोजनवत कहा, अंत विसरता न धारै रे॥ निज० ॥ ४॥ भागचन्द भवअंधकूपमें धर्म रतन काहे डारै रे॥ निज का० ॥ ५॥

६३

हरी तेरी मति नर कौनें हरी। तजि चिन्तामन

कांच गहत शठ ॥ टेक ॥ विषय कषाय रुचत तोकौं नित, जे दुखकरन अरी । हरी० ॥ १ ॥ सांचें मित्र सुहितकर श्रीगुरु, तिनकी सुधि विसरी । हरी तेरी० ॥ २ ॥ परपरनतिमें आपो मानत, जो अति विपति भरी । हरी० ॥ ३ ॥ भागचन्द जिनराज भजन कहुं, करत न एक घरी । हरी तेरी० ॥ ४ ॥

६४

सुमर मन समवसरन सुखदाई । अशरन शरन धनदकृत प्रभुको ॥ टेक ॥ मानस्तंभ सरोवर सुंदर, विमल सलिलजुत खाई । पुष्पवाटिका तुंगकोट पुनि, नाट्यशाल मनभाई ॥ सुमर मन० ॥ १ ॥ उपवन जुगल विशाल वेदिका, धुजपंकति हलकाई । हाटक कोट कल्पतरुवन पुनि, द्वादश सभा वरनि नहिं जाई ॥ सुमर० ॥ तहँ त्रिपीठपर देव स्वयंभू, राजत श्रीजिनराई । जाहि पुरंदरजुत वृन्दारक-वृन्द सु वंदत आई । भागचन्द इमि ध्यावत ते जन, पावत जगठकुराई ॥ सुमर मन० ॥ ३ ॥

६५

सोई है सांचा महादेव हमारा । जाके नाहीं रागरोष मद, मोहादिक विस्तारा ॥ टेक ॥ जाके अंग न भस्म लिप्त है, नहिं रुंडनकृत हारा । भूषण व्याल न माल चन्द्र नहिं, शीस जटा नहिं धारा ॥ सोई है० ॥ १ ॥

जाके गीत न नृत्य न, मृत्यु न, बैलतनो न सवारा। नहिं कोपीन न काम कामिनी, नहिं धन धान्य पसारा ॥ सोई है० ॥२॥ सो तो प्रगट समस्त वस्तुको, देखन जाननहारा। भागचन्द ताहीको ध्यावत, पूजत वारंवारा ॥ सोई है० ॥ ३ ॥

६६

समझाओ जी आज कोई करुनाधरन, आये थे व्याहिन काज वे तो भये, हैं विरागी पशूदया लख लख ॥ टेक ॥ विमल चरन पागी, करन विषय त्यागी, उनने परम ज्ञानानंद चख चख ॥ समझाओ० ॥ १ ॥ सुभग मुकति नारी, उनहिं लगी प्यारी, हमसों नेह कछू नहीं रख रख ॥ समझाओ० ॥२॥ वे त्रिभुवनस्वामी, मदनरहित नामी, उनके अमर पूजे पद नख नख ॥ समझाओ० ॥ ३ ॥ भागचन्द मैं तो तलफत अति-जैसे, जलसों तुरत न्यारी जक झख झख ॥ समझाओ० ॥ ४ ॥

६७

गिरनारीपै ध्यान लगाया, चल सखि नेमिचन्द्र मुनि-राया ॥ टेक ॥ संग भुजंग रंग उन लखि तजि, शत्रू अनंग भगाया। बाल ब्रह्मचारी, व्रतधारी, शिवनारी ेत लाया ॥ गिरनारी० ॥ १ ॥ मुद्रा नगन मोहनिद्रा न, नासादृग मन भाया। आसन धन्य अनन्य वन्य , पुष्ट (?) थूल सम थाया ॥ गिरनारी ०॥२॥ जाहि

पुरन्दर पूजन आये, सुन्दर पुन्य उपाया । भागचन्द मम प्राननाथ सो, और न मोह सुहाया ॥ गि० ॥ ३ ॥

६८

राग दीपचन्दी परज ।

नाथ भये ब्रह्मचारी, सखी घर मैं न रहोंगी ॥टेक॥ पाणिग्रहण काज प्रभु आये, सहित समाज अपारी । ततछिन ही वैराग भये हैं, पशुकरुना उर धारी ॥ नाथ० ॥ १ ॥ एक सहस्र अष्ट लच्छनजुत, वा छविकी वलिहारी । ज्ञानानंद मगन निशिवासर, हमरी सुरत विसारी ॥नाथ० ॥२॥ मैं भी जिनदीक्षा धरि हों अव-जाकर श्रीगिरनारी । भागचन्द इमि भनत सखि-नसों, उग्रसेनकी कुमारी ॥ नाथ० ॥ ३ ॥

६९

राग दीपचन्दी कानेर ।

जानके सुज्ञानी, जैनवानीकी सरधा लाइये ॥ टेक ॥ जा विन काल अनंते भ्रमता, सुख न मिलै कहूं प्रानी ॥ जानके० ॥ १ ॥ स्वपर विवेक अखंड मिलत है जाहीके सरधानी ॥ जानके० ॥ २ ॥ अखिलप्रमान-सिद्ध अविरुद्धत, स्यातपद शुद्ध निशानी ॥ जानके० ॥ ३ ॥ भागचन्द सत्यारथ जानी, परमधरमरज-धानी ॥ जानके० ॥ ४ ॥

७०

राग दीपचन्दी धनाश्री ।

तू स्वरूप जाने विन दुखी, तेरी शक्ति न हलकी वे ॥ टेक ॥ रागादिक वर्णादिक रचना, सोहै सब पुद्गलकी वे ॥ तू स्व० ॥ १ ॥ अष्ट गुनातम तेरी मूरति, सो केवलमें झलकी वे ॥ तू स्व० ॥ २ ॥ जगी अनादि कालिमा तेरे, दुस्त्यज मोहन मलकी वे ॥ तू स्व० ॥ ३ ॥ मोह नसैं भासत है मूरत, पँक नसैं ज्यों जलकी वे ॥ तू स्व० ॥ ४ ॥ भागचन्द सो मिलत ज्ञान सों, स्फूर्ति अखंड स्वबलकी वे ॥ तू स्व० ॥ ५ ॥

७१

राग दीपचन्दी ।

महिमा जिलमतकी, कोई वरन सकै वुधिवान ॥ टेक ॥ काल अनंत भ्रमत जिय जा विन, पावत नहिं निज थान ॥ परमानन्दधाम भये तेही, तिन कीनों सरधान ॥ महिमा० ॥ १ ॥ भव मरुथलमें ग्रीषमरितु रवि, तपत जीव अति प्रान । ताको यह अति शीतल सुंदर, धारा सदन समान ॥ महिमा० ॥ २ ॥ प्रथम कुमत मनमें हम भूले, कीनी नाहिं पिछान । भागचन्द अब याको सेवत, परम पदारथ जान ॥ ० ॥ ३ ॥

७२

राग दीपचन्दी सोरठ।

प्रानी समकित ही शिवपंथा। या विन निर्मल सब ग्रंथा ॥ टेक ॥ जा बिन बाह्यक्रिया तप कोटिक, सफल वृथा है रंथा ॥ प्रानी० ॥ १ ॥ हयजुतरथ भी सारथ विन जिमि, चलत नहीं ऋजु पंथा ॥ प्रानी० ॥ २ ॥ भागचन्द सरधानी नर भये, शिवलछमीके कंथा ॥ प्रानी० ॥ ३ ॥

७३

राग दीपचन्दी।

तेरे ज्ञानावरनदा परदा, तातैं सूझत नहिं भेद स्व परदा ॥ टेक ॥ ज्ञान विना भवदुख भोगै तू, पंछी जिमि विन परदा ॥ तेरे० ॥ १ ॥ देहादिकमें आपौ मानत, विभ्रममदवश परदा ॥ तेरे० ॥ २ ॥ भागचन्द भव विनसै वासी, होय त्रिलोक उपरदा ॥ तेरे० ॥ ३ ॥

७४

राग दीपचंदी खम्माचकी।

जैनमन्दिर हमको लागै प्यारा ॥ टेक ॥ कैंधौ व्याह मुकति मंगल ग्रह, तोरनादि जुत लसत अपारा ॥ जैन० ॥ १ ॥ धर्मकेतु सुखहेत देत गुन, अक्षय पुन्य रतनभंडारा ॥ जैन० ॥ २ ॥ कहुं पूजन कहूं भजन होत हैं, कहुं बरसत पुन श्रुतरसधारा ॥ जैन० ॥ ३ ॥ ध्या-

नारुढ़ विराजत हैं जहां, वीतराग प्रतिविम्ब उदारा ॥ जैन० ॥ ४ ॥ भागचन्द तहां चलिये भाई, तजिकै गृहकारज अघ भारा ॥ जैन० ॥ ५ ॥

७५

राग दीपचन्दी ।

जिनमन्दिर चल भाई, शिव-तिय-व्याह सुमंगलग्रहवत ॥ टेक ॥ जन धर्मिष्ठ समाज सकल तहाँ, तिष्ठत मोद वढाई । अमल धर्मआभूषनमंडित, एकसों एक सवाई ॥ जिन० ॥ १ ॥ धर्म ध्यान निर्धूम हुताशन, कुंड प्रचंड बनाई । होमत कर्महविष्य सुपंडित, श्रुत धुनि मंत्र पढाई ॥ जिन० ॥ २ ॥ मनिमय तोरनादि जुत शोभत, केतुमाल लहकाई । जिनगुन पढ़न मधुर सुर छावत, वुधजन गीत सुहाई ॥ जिन० ॥ ३ ॥ वीन मृदंग रंगजुत वाजत, शोभा वरनि न जाई । भागचंद वर लख हरषत मन, दूलह श्रीजिनराई ॥ जिनमंदिर० ॥ ४ ॥

७६

भववनमें, नहीं भूलिये भाई । कर निज थलकी याद ॥ टेक ॥ नर परजाय पाय अति सुंदर, त्यागहु सकल प्रमाद । श्रीजिनधर्म सेय शिव पावत, आतम [illegible]सु प्रसाद ॥ भवव० ॥ १ ॥ अवके चूकत ठीक न [illegible], पासी अधिक विषाद । सहसी नरक वेदना

पुनि तहां, सुणसी कौन फिराद ॥ भव० ॥ २ ॥ भागचन्द श्रीगुरु शिक्षा विन, भटका काल अनाद । तू कर्ता तूही फल भोगत, कौन करै बकवाद ॥ भव०॥३॥

७७

जे सहज होरीके खिलारी, तिन जीवनकी बलिहारी ॥ टेक॥ शांतभाव कुंकुम रस चन्दन, भर ममता पिचकारी । उड़त गुलाल निर्जरा संवर, अंवर पहरैं भारी ॥ जे० ॥ १ ॥ सम्यक्दर्शनादि सँग लेकै, परम सखा सुखकारी । भींज रहे निज ध्यान रंगमें, सुमति सखी प्रियनारी ॥ जे० ॥ २ ॥ कर स्नान ज्ञान जलमें पुनि, विमल भये शिवचारी । भागचन्द तिन प्रति नित वंदन, भावसमेत हमारी ॥ जे० ॥ ३ ॥

७८

राग दीपचन्दी सोरठकी ।

लखिकै स्वामी रूपको, मेरा मन भया चंगा जी ॥टेक॥ विभ्रम नष्ट गरुड लखि जैसे, भगत भुजंगा जी ॥ लखि० ॥ १ ॥ शीतल भाव भये अव न्हायो, भक्ति सुगंगा जी ॥ लखि० ॥ २ ॥ भागचन्द अव मेरे लागो, निजरसरंगा जी ॥ लखिकै० ॥ ३ ॥

७९

राग दीपचन्दी ईमन ।

स्वामीरूप अनूप विशाल, मन मेरे वसा ॥ टेक ॥

हरिगन चमरवृन्द ढोरत तहां, उज्जल जेम मराल ॥ स्वामी० ॥ १ ॥ छत्रत्रय ऊपर राजत पुनि, सहित सुमुक्तामाल ॥ स्वामी० ॥ २ ॥ भागचन्द ऐसे प्रभुजीको, नावत नित्य त्रिकाल ॥ स्वामी० ॥ ३ ॥

८०

राग दीपचन्दी ।

करौ रे भाई, तत्त्वारथ सरधान । नरभव सुकुल सुछेत्र पायके ॥ टेक ॥ देखन जाननहार आप लखि, देहादिक परमान ॥ करौ रे भाई० ॥ १ ॥ मोह रागरुष अहित जान तजि, बंधहु विधि दुखदान ॥ करौ रे भाई० ॥ २ ॥ निज स्वरूपमें मगन होय कर, लगनविषय दो भान ॥ करौ रे भाई० ॥ ३ ॥ भागचन्द साधक है साधो, साध्य स्वपद अमलान ॥ करौ रे भाई० ॥ ४ ॥

८१

आनन्दाश्रु बहैं लोचनतैं, तातैं आनन न्हाया । गद्गद स्पष्ट वचनजुत निर्मल, मिष्टगान सुरगाया ॥ टेक ॥ भव वनमें बहु भ्रमन कियो तहां, दुख दावानल ताया । अब तुम भक्तिसुधारस वापी,-में अवगाह कराया ॥ आ० ॥ १ ॥ तुम वपुदर्पनमें मैंने अब, आत्मस्वरूप लखाया । सर्वकषाय नष्ट भये अब ही, विभ्रम दुष्ट भगाया ॥ आ० ॥ २ ॥ कल्पवृक्ष मैंने निज

गृहके, आंगनमांझ उगाया। स्वर्ग विमोक्ष विलास-वास पुनि, मम करतलमें आया॥ आ० ॥ ३ ॥ कलिमल पंक सकल अब मैंने, चितसे दूर बहाया। भागचन्द तुम चरनाम्बुजको भक्तिसहित सिर नाया॥ आ० ४॥

८२

राग दीपचन्दी परज।

महाराज श्रीजिनवर जी, आज मैंने प्रभुदर्शन पाये॥ टेक॥ तुमरे ज्ञान द्रव्य गुन पर्जय, निज चित गुन दरशाये। निज लच्छनतैं सकल विलच्छन, ततछिन पर दृग आये॥ म० ॥ १ ॥ अप्रशस्त संक्लेश भाव अघ,-कारन ध्वस्त कराये। राग प्रशस्त उदयतैं निर्मल, पुन्य समस्त कमाये॥ म० ॥२॥ विषय कषाय अताप नस्यो सब, साम्य सरोवर न्हाये। रुचि भई तुम समान होवेकी, भागचन्द गुन गाये॥ म० ॥ ३ ॥

८३

राग दीपचन्दी जोड़ी।

जिन स्वपरहिताहित चीना, जीव तेही हैं साचे जैनी॥ टेक॥ जिन बुधछैनी पैनीतैं जड़, रूप निराला कीना, परतैं विरच आपसे राचे, सकल विभाव विहीना॥ जि० ॥ १ ॥ पुन्य पाप विधि बंध उदयमें, प्रमुदित होत न दीना। सम्यकदर्शन ज्ञान चरन निज, भाव सुधारस भीना॥ जिन० ॥ २ ॥

विषयचाह तजि निज वीरज सजि, करत पूर्वविधि छीना। भागचन्द साधक ह्वै साधत, साध्य स्वपद स्वाधीना ॥ जिन० ॥ ३ ॥

८४

राग दीपचन्दी।

यह मोह उदय दुख पावै, जगजीव अज्ञानी ॥ टेक ॥ निज चेतनस्वरूप नहिं जानै, परपदार्थ अपनावै। पर परिनमन नहीं निज आश्रित, यह तहँ अति अकुलावै ॥ यह० ॥ १ ॥ इष्ट जानि रागादिक सेवै, ते विधिबंध बढ़ावै। निजहितहेत भाव चित सम्यक्दर्शनादि नहिं ध्यावै ॥ यह० ॥ इन्द्रियतृप्ति करनके काजै, विषय अनेक मिलावै। ते न मिलैं तब खेद खिन्न ह्वै, समसुख हृदय न ल्यावै ॥ यह० ॥ ३ ॥ सकल कर्मछय लच्छन लच्छित, मोच्छदशा नहिं चावै। भागचन्द ऐसे भ्रमसेती, काल अनंत गमावै। यह मोह० ॥ ४ ॥

८५

प्रेम अब त्यागहु पुद्गलका। अहितमूल यह जाना सुधीजन ॥ टेक ॥ कृमि-कुल-कलित स्रवत नव द्वारन, यह पुतला मलका। काकादिक भखते जु न होता, चामतना खलका ॥ प्रेम० ॥ १ ॥ काल-व्याल थित इसका नहिं, है विश्वास पलका। क्षणिक

मात्रमें विघट जात है, जिमि बुद्बुद् जलंका ॥ प्रेम० ॥ २ ॥ भागचन्द क्या सार जानके, तू या सँग ललका । तातैं चित अनुभव कर जो तू, इच्छुक शिवफलका ॥ प्रेम० ॥ ३ ॥

८६

सहज अबाध समाध धाम तहाँ, चेतन सुमति खेलैं होरी ॥ टेक ॥ निजगुनचंदनमिश्रित सुरभित, निर्मल कुंकुम रस घोरी । समता पिचकारी अति प्यारी, भर जु चलावत चहुँ ओरी ॥ सहज० ॥ १ ॥ शुभ संवर सुअबीर आडंबर, लावत भरभर कर जोरी । उड़त गुलाल निर्जरा निर्भर, दुखदायक भव थिति टोरी ॥ सहज० ॥ २ ॥ परमानंद मृदंगादिक धुनि, विमल विरागभावधोरी । भागचंद दृग--ज्ञान --चरनमय, परिनत अनुभव रँग बोरी ॥ सहज० ॥३॥

८७

सत्ता रंगभूमिमें, नटत ब्रह्म नटराय ॥ टेक ॥ रत्नत्रय आभूषणमंडित, शोभा अगम अथाय । सहज सखा निशंकादिक गुन, अतुल समाज बढ़ाय ॥ सत्ता रंग० ॥ १ ॥ समता बीन मधुररस बोलै, ध्यान मृदंग बजाय । नदत निर्जरा नाद अनूपम, नूपुर संवर त्याय ॥ सत्ता रंग० ॥२॥ लय निज-रूप-मगनता-ल्यावत, नृत्य सुज्ञान कराय । समरस गीतालापन पुनि जो, दुर्लभ

जगमह आय ॥ सत्ता रंग० ॥ ३ ॥ भागचन्द आपहि रीझत तहाँ, परम समाधि लगाय । तहाँ कृतकृत्य सु होत मोक्षनिधि, अतुल इनामहिं पाय ॥ सत्ता० ॥ ॥ ४ ॥

इति श्रीभागचन्द्रपदावली समाप्ता ।

पद भजनोंकी पुस्तकें ।

जैनपदसंग्रह प्रथम भाग, पं० दौलतरामजीके १२४ पदोंका संग्रह । ॥)

जैनपदसंग्रह द्वितीय भाग, पं० भागचन्दजीके ८७ पदोंका संग्रह । ।)

जैनपदसंग्रह तृतीय भाग, भूधरदासजीके पद और विनतियोंका संग्रह । ।-)

जैनपदसंग्रह चतुर्थ भाग, कविवर द्यानतरायजीके ३२३ पदोंका संग्रह । १)

जैनपदसंग्रह पांचवां भाग, कविवर बुधजनजीके २३३ पदोंका संग्रह । ॥≈)

जिनेश्वरपदसंग्रह—पं० जिनेश्वरदासजी पदोंका संग्रह ॥)

जैन सुरस पदें—हीराचन्द अमोलिकक्रत । ।≈)

सुखसागर भजनावली—ब्र० शीतलप्रसादजी कृत १।)

इनके सिवाय न्यामतसिंहजी कृत गायनकी सब पुस्तकें और सब जगहके छपे हुए जैन ग्रन्थ हमारे यहां पर हर समय तैयार मिलते हैं । विशेष जाननेके लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइये ।

मिलनेका पताः—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।